।। श्रीराधासर्वेश्वरो विजयते ।।

।। श्रीभगवन्निम्बार्काचार्याय नमः।।

श्रीमुकुन्दमहिमास्तोत्रम्

(भक्ततोषिणी - हिन्दी टीका सहित)

-विद्वद्वर श्रीमत्पुरुषोत्तमप्रसाद

* श्रीसर्वेश्वरो जयति *

॥ श्रीभगवन्निम्बार्काचार्याय नमः ॥

श्रीसनत्कुमार सन्तति प्रवर्त्तक-निखिल महीमण्डलाचार्यचक्रचूड़ामणि
श्रीभगवन्निम्बाकाचार्य मताब्जभास्कर श्रीमत्स्वभूदेवाचार्य चरणानुगामी
पदवाक्य प्रमाण-पारावारीण-स्वाभाविक भेदाभेद सिद्धान्त-निष्णात -

विद्वद्वर श्रीमत्पुरुषोत्तमप्रसाद विरचित--

श्रीमुकुन्द महिमर-तोत्र

पण्डित श्रीकिशोरदास विरचित-

भक्ततोषिणी

नामक हिन्दी टीका सहित

सम्पादक--
पं० वासुदेवशरण उपाध्याय

प्रकाशक--
अ० भा० श्रीनिम्बार्काचार्यचार्यपीठस्थ शिक्षा समिति
निम्बार्कतीर्थ (सलेमाबाद) किशनगढ, जि० अजमेर (राज०)
श्रीराधाष्टमी महोत्सव
वि० सं० २०६६ श्रीनिम्बार्काब्द ५१०५

पुस्तक प्राप्ति स्थान--
अखिल भारतीय श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ
निम्बार्कतीर्थ (सलेमाबाद)
फोन नं0 01497 - 227831

तृतीयावृत्ति--२०००

मुद्रक--
श्रीनिम्बार्क - मुद्रणालय
निम्बार्कतीर्थ (सलेमाबाद)

न्यौछावर
पाँच रुपये

॥ श्रीराधासर्वेश्वरो विजयते ॥

* अथ भूमिका *

इस मुमुक्षुजन जीवातु "श्रीमुकुन्द महिम स्तोत्र रत्न" के प्रणेता निवृत्ति पथप्रदर्शक भगवदवतार महर्षि श्रीसनत्कुमार सन्तति प्रवर्त्तक स्वाभाविक भेदाभेद सिद्धान्त पथ-निदर्शक निखिल मही-मण्डलाचार्य चक्र चूड़ामणि श्रीभगवन्निम्बार्काचार्य सिद्धान्त निर्वाहकाचार्य श्रीमत्स्वभूरामदेवाचार्य चरणानुयायी वदवाक्य प्रमाण पारावारीण आदिगौड़ द्विज वंशावतंस भगवान् श्रीहयग्रीव कृपापात्र विद्वद्वर "श्रीपुरुषोत्तमप्रसाद" महानुभाव हैं।

यह कविवर पञ्चनदीय (पञ्जाब) प्रदेशान्तर्गत 'जगाधरी' ग्राम निवासी, परम भागवत "श्रीनारायणप्रसाद" सुधी के एकमात्र प्रिय पुत्र थे। इनके दीक्षा गुरु महाममहिम "श्रीधर्मदेवाचार्य" थे। इन ग्रन्थकार के विशेष परिचय का उल्लेख हमने इन्हीं के बनाये "सविशेष निर्वशेष श्रीकृष्णस्तवराज" के "श्रुत्यन्त सुरद्रुम" नामक भाष्य में किया है। यह ग्रन्थ प्राचीन संस्कृत ग्रन्थ जीर्णोद्धरण बद्ध कक्ष काशी निवासी श्रीहरिदास गुप्त के यहाँ प्रकाशित हो चुका है। तथा 'श्रीआचार्य परम्परा परिचय' में भी इनके बनाये जो ग्रन्थ आज तक प्राप्त हुए हैं, उनका वृत्तान्त लिख दिया है, जिज्ञासु पाठक उसमें देख लें। अब यह ग्रन्थ पुनः तृतीयावृत्ति के रूप में प्रकाशित होकर भक्तजनों के समक्ष प्रस्तुत है, जिसे आप महानुभाव अपने अनुशीलन से इसका सार ग्रहण कर आनन्द का अनुभव करें।

निवेदक -

वैशाख शुक्ल १४ सोमवार — **पं० किशोरदास**

वि० सं० १९९४ — वंशीवट, वृन्दावन, मथुरा (उ. प्र.)

प्राक्कथन

श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय के प्राचीनतम उत्कृष्ट विद्वानों में विद्वद्वरेण्य श्रीशुकसुधीजी, महामनीषी-श्रीअनन्तरामजी, श्रीपुरुषोत्तमप्रसादजी-श्रीगिरिधरप्रपन्नजी प्रभृति इन कतिपय मूर्द्धन्य विद्वन्महानुभावों ने निम्बार्क दर्शन, निम्बार्क साहित्य परक ग्रन्थों का अनुपम प्रणयन कर जो निम्बार्क-सम्प्रदाय की चिरस्मरणीय सेवायें की है वे नितान्त रूपेण परम गौरवास्पद हैं।

इन्हीं उपर्युक्त विद्वानों में विद्वद्वर श्रीपुरुषोत्तमप्रसादजी ने विविध ग्रन्थों की रचना के साथ यह "श्रीमुकुन्दमहिमस्तोत्र" की सुरचना कर जो महनीय कार्य किया है वह सदा-सर्वदा अक्षुण्णरूपेण विद्वज्जनों भावुक भक्तजनों को आनन्दानुभूति एवं नित्यनिकुञ्ज-विहारी व्रजवृन्दावनाधीश सर्वेश्वर भगवान् श्रीराधाकृष्ण की पराभक्ति में सराबोर करने में सर्वाङ्गीण रूप से परम सहायक होगा।

उपर्युक्त स्तोत्र में जिस अनिर्वचनीय विधा से निखिलभुवन-मोहन श्रीकृष्ण भगवान् के नख-शिख पर्यन्त स्वरूप का जो अनुपमेय चित्रण परिवर्णन किया गया है वह निश्चय ही अतीव रससुधासिन्धु में अवगाहन कराने वाला है। इस स्तोत्र का हिन्दी भाषानुवाद श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय के परम प्रख्यात विद्वद्वरेण्य वेदान्तनिधि पं० श्रीकिशोरदासजी महाराज बंशीवट, वृन्दावन ने बड़ी ही सरस मधुर भाषा में निबद्ध किया है जो भावुकजनों के लिए सुगमता से अवबोध कारक होगा। इन्हीं पण्डिजी ने सश्रम अनेक ग्रन्थ का अन्वेषण कर

उन्हें प्रकाशित कराने में यथेष्ठ योगदान किया है जो सर्वदा चिरस्मरणीय रहेगा।

श्रीमद्भागवतादि पुराणों के कथा प्रवक्ता यदि इस ''श्रीमुकुन्दमहिम स्तोत्र'' की व्याख्यापूर्वक कथा प्रवचन करें तो रसिक भगवज्जनों को उन सर्वेश्वर श्रीराधाकृष्ण भगवान् के इस दिव्य स्वरूप चित्रण का श्रवण करके श्रीराधामाधव प्रभु के श्रीयुगलचरणारविन्दों में अनन्य अनुराग प्रतिष्ठित होगा। प्रस्तुत इस स्तोत्र की प्रतियाँ दुर्लभ हो गई थीं अनन्त श्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर श्री ''श्रीजी'' महाराज की सदिच्छा एवं प्रेरणा से इसका पुनः यहाँ अ० भा० श्रीनिम्बार्काचार्यपीठ से मुद्रित कराके प्रकाशित कराने की योजना बनी और तदनुसार यह ग्रन्थ विद्वन्महानुभाव एवं परम भागवत भगवद्भक्तों के लिए सहज सुलभ हो गया है जिसे प्राप्त कर सभी परम लाभान्वित हों।

विदुषांवशंवद-
निम्बार्कभूषण **वासुदेवशरण उपाध्याय**
व्या० सा० वेदान्ताचार्य
प्राचार्य-
श्रीसर्वेश्वर संस्कृत महाविद्यालय
निम्बार्कतीर्थ - सलेमाबाद
अजमेर (राज०)

शुभमिति-
भाद्रशुक्ल प्रथम ९
(श्रीराधाष्टमी)
शुक्रवार सं. २०६६
दि० २८-८-२००९ ई.

श्रीमुकुन्दवन्दनाष्टकम्

देवं प्रपन्नार्तिहरं शरण्यं सत्यं- चिदानन्दमयस्वरूपम् ।।
मुक्तोपसृप्यं नवनीरदाभं श्रीमन्मुकुन्दं प्रणमामि नित्यम् ।।१ ।।
सौशील्यवात्सल्यगुणाढ्यमीशं कुञ्जेश्वरं रासविहारशीलम् ।।
सखीसमूहैः परिगीयमानं श्रीमन्मुकुन्दं प्रणमामि नित्यम् ।।२ ।।
माधुर्यभावे मधुरस्वरूपमैश्वर्यभावे भगवत्स्वरूपम् ।।
वात्सल्यभावे च सुबालरूपं श्रीमन्मुकुन्दं प्रणमामि नित्यम् ।।३ ।।
वृन्दावने नित्य-निकुञ्जमध्ये रसात्मकं रासविहारिरूपम् ।
ब्रह्मेशवृन्दारकवृन्दवन्द्यं श्रीमन्मुकुन्दं प्रणमामि नित्यम् ।।४ ।।
मोक्षप्रदानाद्धि मुकुन्दसंज्ञं ज्ञानक्रियाशक्तिबलादिपूर्णम् ।।
सञ्चिन्तनीयं शरणं प्रपन्नैः श्रीमन्मुकुन्दं प्रणमामि नित्यम् ।।५ ।।
ध्येयं कुमारैः सुमनोभिराद्यं गेयं वचोभिर्मुनिनारदाद्यैः ।।
आचार्यवर्यैश्च समर्चनीयं श्रीमन्मुकुन्दं प्रणमामि नित्यम् ।।६ ।।
यत्पादपद्माश्रयणाद् विलीना भवन्ति जन्मादिविकारभावाः ।
तं सर्वपूज्यं परमं वरेण्यं श्रीमन्मुकुन्दं प्रणमामि नित्यम् ।।७ ।।
वाणी मुकुन्दस्य गुणान् गृणातु मनस्तु तस्याङ्घ्रियुगं वृणोतु ।
करौ सदा पूजनतत्परौ स्तामन्यानि चाङ्गानि फलीभवन्तु ।।८ ।।

--वासुदेवशरण उपाध्याय
प्राचार्य-
श्रीसर्वेश्वर संस्कृत महाविद्यालय
निम्बार्कतीर्थ - सलेमाबाद
जि० अजमेर (राज०)

॥ श्रीसर्वेश्वरो जयति ॥

॥ श्रीभगवन्निम्बार्काचार्याय नमः ॥

श्रीमन्मुकुन्दमहिमस्तोत्रव्याख्या--

भक्ततोषिणी

मंगलाचरण-

श्रीश्रीनिवासमाचार्यमज्ञानतिमिरापहम् ।
भक्ताभीष्टप्रदातारं भाष्यकारं नमाम्यहम् ।।१ ।।

अथ ग्रन्थारम्भः-

श्रीमुकुन्दं जगद्योनिं गोपीकान्तं रमापतिम् ।
ब्रह्मेशानादिभिर्ध्येयं शास्त्रयोनिं नमाम्यहम् ।।१ ।।

जगत् की उत्पत्ति के कारण, गोपीकान्त, रमापति, ब्रह्मा-शिवादिकों के ध्येय, शास्त्र प्रमाण के विषय, श्रीमुकुन्द को मैं नमस्कार करता हूँ॥१॥

अनन्ततां श्रीभगवन्महिम्नो
यतः श्रुतिः प्राह ततो न कोऽपि ।।
कात्स्न्र्येन वेत्तुं वदितुं च शक्तो
मुकुन्द ! तेऽहं नम एव कुर्वे ।।२ ।।

श्रुति श्रीभगवान् की महिमा को अनन्त कहती है, अतः कोई भी श्रीभगवान् की सम्पूर्ण महिमा को जान तथा कह नहीं सकता है। तथापि हे मुकुन्द ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ॥२॥

ब्रह्म च लक्ष्मीश्च सरस्वतीशः
शेषो गणेशोऽपि महर्षयस्तथा ।।

मुकुन्दमाहात्म्यमलं न वक्तुं
समग्रमन्ये कवयस्तु किं पुनः ।।३।।

ब्रह्मा, लक्ष्मी, सरस्वती, महादेव, शेष, महेश तथा महर्षिगण भी श्रीमुकुन्द भगवान् के समग्र माहात्म्य को नहीं कह सकते हैं, तब अन्य कवियों की क्या सामर्थ्य है कि वह भगवान् के समग्र माहात्म्य का वर्णन करें।।३।।

अन्तं महिम्नस्त्वमितस्य यो वै
ब्रूयान्मुरारे ! स हि तेऽल्पबुद्धिः ।
जातो न वक्ता न जनिष्यते च
न जायमानः श्रुतिरेवमाह ।।४।।
शास्तुर्जनानां जगतां च कर्त्तु-
र्दातुः फलानां च धियां नियन्तुः ।
अन्तं मम्हिनो भगवन् ! किमात्मनो
जानास्यनन्तस्य त्वमप्यशेषदृक्।।५।।

हे मुरारे ! जो पुरुष अमितनाम, अनन्तस्वरूप, समस्त जनों के शासक, जगत्कर्त्ता, सब फलों के दाता, तथा बुद्धि के नियामक, आपकी महिमा के अन्त को कहता है, वह निश्चय अल्पबुद्धि है। श्रुति (वेद) का सिद्धान्त है कि भगवान् की समस्त महिमा को कहने वाला न कोई हुआ, न होगा, न है। हे सर्वदर्शिन्! हे भगवन् ! क्या आप अपनी महिमा के अन्त को जानते हैं? भाव यह है कि सर्वदर्शी होने पर भी श्रीभगवान् अपनी अनन्त महिमा के अन्त को नहीं जानते हैं। तब औरों की क्या सामर्थ्य है। यहाँ शंका होती है कि भग्वान् सर्वज्ञ होकर भी अपनी सम्पूर्ण महिमा को नहीं जानते हैं तो

सर्वज्ञता की हानि होती है, और यदि कहें कि भगवान् जानते हैं, तो महिमा अनन्त नहीं हो सकती है। अब आगे के श्लोक से इसका उत्तर देते हैं ॥४-५॥

नैतेन सर्वज्ञ ! तवाज्ञताऽस्ति
ह्यन्तं यतो नैव च ते महिम्नः ।।
लोकेऽज्ञता नास्ति यथा नृशृङ्ग-
द्रष्टुर्जनस्यापि तथा मुकुन्द ! ।।६ ।।

हे सर्वज्ञ ! श्रीकृष्ण ! आप अपनी महिमा के अन्त को नहीं जानते हैं, इससे आपकी अज्ञता सिद्ध नहीं होती है, क्योंकि आपकी महिमा (गुणशक्त्यादि) अनन्त हैं और उनका न जानना भी आपकी सर्वज्ञता ही को सिद्ध करता है। हे मुकुन्द ! जैसे लोक में मनुष्य के शृंग को नहीं देखने वाला पुरुष अज्ञ नहीं हो सकता है, क्योंकि जब मनुष्य के शृंग होता ही नहीं, तब देखेगा कहाँ से ॥६॥

न चापि वेदो महिमानमाह
कात्स्न्र्येन ते श्वासमयो हि देव !।।
वाचो निवर्त्तन्त इति स्ववाक्यं
कात्स्न्र्येन ज्ञानस्य निषेधकं यत् ।।७ ।।
सामान्यतो ज्ञाननिषेधकं स्या-
देवं तु वक्तुं न हि कोऽपि शक्तः ।।
वाक्यस्य शेषे परमात्मनस्ते,
आनन्दवेत्तुस्त्वभयस्य कीर्त्तनात् ।।८।।

हे देव ! (प्रकाशस्वरूप) आपका श्वासमय वेद भी सम्पूर्णतया आपकी महिमा को नहीं कहता है। "यतो वाचो

निवर्त्तन्ते'' यह आपका वाक्यरूप वेद वचन जो समग्रता से आपके ज्ञान का निषेध करता है, वह सामान्य से आपके सम्पूर्ण ज्ञान का निषेधक है। यदि उक्त वाक्य को सर्वथा आपके ज्ञान का निषेधक मान लें तो कोई भी आपके ज्ञान को जान नहीं सके और इसी वाक्य के अन्त में ''आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्न बिभेति कदाचन'' यह वाक्य आपके आनन्द के जानने वाले को अभय होना कथन करता है, इसका भी बोध होगा। इससे उक्त सिद्धान्त ही परम श्रेष्ठ है ॥७-८॥

यद्यप्यनन्तो महिमाऽस्य भूम्न-
स्तथापि तल्लेशकथाऽवबोधात् ।।
श्रेयो वदन्ति श्रुतयो नराणां
तस्मात्ततो नोपरमन्ति सन्तः ।।९ ।।

यद्यपि भूमादेव की महिमा अनन्त है, इससे सम्पूर्णतया कोई भी उसका वर्णन नहीं कर सकता है, तथापि भूमादेव (श्रीकृष्ण) की कथा के लेश (अल्प) ज्ञान से भी मनुष्यों का श्रेय (कल्याण) होता है, यह श्रुतियां कहती हैं। इसी से महात्मा पुरुष यथाशक्ति श्रीभगवान् की महिमा कथन करते हैं ॥९॥

भक्तिं न शक्नोमि हरौ विधातुं
न ज्ञानमात्रां न च धर्मनिष्ठाम् ।।
तथापि लज्जां परिहाय कृष्ण !
स्तौम्येव मां पाह्यागतिं व्रजेश ! ।।१०।।

हे श्रीकृष्ण ! (भक्तों के पापकर्षक) मैं हरिस्वरूप आपका भक्त तथा ज्ञानी एवं धर्मनिष्ठ नहीं हूँ । तथापि हे व्रजेश ! अन्य साधनहीन मैं लज्जा छोड़कर आपकी स्तुति करता हूँ, आप मेरी रक्षा

करें ॥१०॥

निमज्जमाना महिमार्णवे ये
वेदाश्च ब्रह्मेशमुखाश्च देवाः ।
तेनैव जग्मुः परमेशगाधतां
कथं विलज्जेत नरोऽल्पबुद्धिः ॥११॥

भगवान् की महिमा के समुद्र में निमज्जमान वेद, ब्रह्मा, शिवादि देव भी परमेश श्रीकृष्ण के गुणों का पार नहीं पाते हैं, तब अल्पबुद्धि मनुष्य पार न पावे तो क्या लज्जा है ? ॥११॥

परमपुरुषमाद्यं सच्चिदानन्दरूपं
चिदचिदखिलविश्वं भासया भासयन्तम् ।
विधिशिवसुरराजैर्वन्दिताङ्घ्रिं शिरोभिः
शरणमुपगतोऽहं माधवं गोपवेषम् ॥१२॥

परम पुरुष, सबके आद्य, सत्-चित्-आनन्द-स्वरूप, जड़ एवं चेतनरूप समस्त विश्व को अपने प्रकाश से प्रकाशित करने वाले, ब्रह्मा, शिव, तथा इन्द्र के मस्तकों से पूजित चरण, गोपवेष माधव (मधुवंश में हुए श्रीकृष्ण) के शरण में मैं प्राप्त हूँ ॥१२॥

अब श्रीकृष्ण भगवान् की अनन्तरूपता दिखाते हैं-

ब्रह्माण्डानि च कोटिकोटिशतशः सङ्कल्पमात्रेण यः ।
सृष्ट्वा तेषु प्रविश्य पाति सततं धर्माश्च संस्थापयन् ॥
बद्धान् जीवचयान् स्वकर्मनिगडैस्तत्तत्फलं भोजयन् ।
भक्तानुद्धरते तमेव शरणं श्रीमन्मुकुन्दं श्रये ॥१३॥

जो कोटि कोटि शत ब्रह्माण्डों को संकल्पमात्र से उत्पन्न कर उनमें प्रवेश करके रक्षा करते हैं, तथा निरन्तर धर्मों को संस्थापन

करते हुए बद्धजीवों को अपने कर्मवन्धनों द्वारा उन फलों का भोग कराते हुए स्वभक्तों का उद्धार करते हैं, मैं उन रक्षक श्रीमुकुन्द भगवान् का आश्रय करता हूँ॥१३॥

प्रविश्य ब्रह्माणमिदं ससर्ज ।
हरं समाविश्य हरत्यशेषम् ।।
स्वयं त्वसाम्यातिशयोऽपि पाति
सर्वेश्वरं तं शरणं प्रपद्ये ।।१४ ।।

जिनने ब्रह्मा में प्रवेशकर जगत् को उत्पन्न किया है, तथा जो महादेव में प्रवेश कर सम्पूर्ण जगत् का संहार करते हैं, एवं स्वयं समस्त जगत् की रक्षा करते हैं, उन अपने समान तथा अधिक रहित सर्वेश्वर श्रीकृष्ण की शरण में मैं प्राप्त होता हूँ॥१४॥

द्रष्टा स्वयं जीवगतो मुकुन्द-
श्चक्षुर्गतो दर्शनतामुपैति ।।
रूपं गतो गोचरतां गतो यः
सोऽनन्तरूपः शरणं ममास्ति ।।१५।।

(२) दे०

जो श्रीमुकुन्द जीव को प्राप्त हो स्वयं द्रष्टा, तथा चक्षु को प्राप्त हो स्वयं दर्शनता को प्राप्त होते हैं, एवं रूप प्राप्त हो गोचरता (प्रत्यक्षता) को प्राप्त होते हैं, वह अनन्तरूप श्रीकृष्ण मेरे शरण हैं॥१५॥

गन्धायते गन्धगतो य एव
घ्राणायते घ्राणमवाप्य यो वै ।।

घ्रात्रीयते घ्रातृगतो य आद्यः
सोऽनन्तरूपः शरणं मदीयम् ।।१६।।

जो सबके आदिपुरुष श्रीकृष्ण गन्ध को प्राप्त हो गन्ध के सदृश, तथा घ्राण को प्राप्त हो घ्राण के तुल्य, एवं घ्राता को प्राप्त हो घ्राता के समान आचरण करते हैं, वह अनन्तरूप श्रीकृष्ण मेरे शरण (रक्षक) हैं॥१६॥

शब्दायते शब्दगतो य एवं
श्रोत्रायते श्रोत्रगतश्च विष्णुः ।।
श्रोत्रीयते श्रोतृगतश्च यो वै
सोऽनन्तरूपः शरणं ममाऽस्ति ।।१७।।

जो शब्द को प्राप्त हो शब्द के समान, तथा कर्णेन्द्रिय (कान) को प्राप्त हो कर्ण के समान, एवं श्रोता (सुनने वाले) को प्राप्त हो, श्रोता के सदृश व्यवहार करते हैं, वह अनन्तरूप श्रीविष्णु (सर्वव्यापक) भगवान् मेरे शरण हैं॥१७॥

रसायते यो हि रसं प्रविष्टो
जिह्वायते यो रसनां गतोऽपि ।।
जीवात्मना यो रसिकश्च विष्णुः
सोऽनन्तरूपः शरणं जनानाम् ।।१८।।

जो रस में प्रविष्ट हो रस के तुल्य, एवं जिह्वा को प्राप्त हो जिह्वा के समान आचरण करते हैं, तथा जीवरूप से रस का आस्वादन करते हैं, वह अनन्तरूप श्रीविष्णु परमात्मा सर्वजनों के शरण हैं॥१८॥

स्प्रष्ट्रीयते स्प्रष्ट्रगतो विभुर्यः
स्पर्शायते स्पर्शगतश्च भूयः ।।
यस्त्वच्यते प्राप्य त्वगिन्द्रियं च
सोऽनन्तरूपः शरणं मदीयम् ।।१९।।

जो विभु (सर्वसमर्थ) छूनेवाले को प्राप्त हो छूनेवाले के समान, तथा स्पर्श को प्राप्त हो स्पर्श के तुल्य, एवं त्वगिन्द्रिय को प्राप्त हो त्वचा के समान व्यवहार करते हैं, वह अनन्तरूप श्रीकृष्ण मेरे शरण हैं॥१९॥

ध्यात्रीयते ध्यातृगतश्च यो वै
ध्यानायते ध्यानगतः स्वयं च ।
ध्येयश्च संसारनिवर्त्तको यः
सोऽनन्तरूपः शरणं जनानाम् ।।२०।।

जो भक्तों के संसार निवर्त्तक, ध्येय, स्वयं ध्याता में प्रविष्ट हो ध्याता पुरुष के समान, तथा ध्यान को प्राप्त हो ध्यान के समान आचरण करते हैं, वह अनन्तरूप श्रीकृष्ण सर्वजनों के शरण हैं॥२०॥

प्राणात्मतां प्राप्य करोति देवः
क्रिया समस्ताः पचति स्वयञ्च ।।
वैश्वानरात्मानमशेषमन्त-
स्तमेव जीवः शरणं प्रपद्ये ।।२१ ।।

जो देव (दिव्य स्वरूप) प्राणात्मता को प्राप्त हो समस्त क्रियाओं को करते हैं, तथा आप ही पाक करते हैं, उन वैश्वानर (अग्नि) रूप सब के अन्तरात्मा श्रीकृष्ण की शरण में मैं जीव प्राप्त होता हूँ॥२१॥

कर्मेन्द्रियं प्राप्य च कर्महेतुः
कर्माणि संव्याप्य च कर्मरूपः ।।
कर्त्रीयते कर्तृगतश्च यो वै
सोऽनन्तरूपो जगतः शरण्यः ।।२२।।

जो कर्मेन्द्रिय (हस्तपादादि) को प्राप्त होकर स्वयं कर्म करते हैं, तथा सब कर्मों में अच्छे प्रकार व्याप्त हो कर्म रूप होते हैं, एवं जो कर्त्ता में प्रविष्ट हो कर्त्ता के समान आचरण करते हैं, वह अनन्त रूप श्रीकृष्ण जगत् के शरण्य हैं॥२२॥

सर्वायते सर्वगतोऽपि कृष्णोऽ-
तद्धर्मयोगी परमेश्वरत्वात् ।।
निर्लेपमीशं तमनन्तशक्तिं
हरिं प्रपन्नोऽस्मि गतिं महात्मनाम् ।।२३।।

जो समस्त चराचरों में प्रविष्ट हो सबों के तुल्य व्यवहार करते हैं, तथापि परमेश्वर होने से उनके धर्मों से लिप्त नहीं होते हैं, वह निर्लेप, ईश, महात्माओं के गतिरूप श्रीहरि के शरण में मैं प्राप्त होता हूँ॥२३॥

सर्वत्र सत्त्वेऽपि तवाद्यदेव !
सर्वेण साकं न च ते ग्रहोऽस्ति ।।
तवेन्द्रियाणां ग्रहणोऽक्षमत्वा-
द्यथा रसादिग्रहणे त्वगादि ।।२४ ।।

हे आद्यदेव ! आप सर्वत्र व्यापक हैं, तथापि सबके साथ आपका ग्रहण नहीं होता है। जैसे रसादि वस्तु के ग्रहण में त्वगिन्द्रिय असमर्थ है, वैसे ही आपकी ग्रहण करने में भौतिक इन्द्रियाँ भी

असमर्थ हैं ॥२४॥

भीतो हि यस्मात्किल वाति वायुः
सूर्यश्च भीतः समुदेति नित्यम् ।।
अग्निस्तथेन्द्रः कुरुते यदाज्ञां
मृत्युश्च भीतो निधने प्रवृत्तः ।।२५ ।।

जिन (श्रीकृष्ण) से भीत हो वायु सदा बहता रहता है, तथा सूर्य भी भीत हो नित्य ही उदित होता है, एवं अग्नि और इन्द्र जिनकी आज्ञा का पालन करते हैं, एवं मृत्यु भी भीत होकर जिनकी आज्ञा से संहार में प्रवृत्त है ॥२५॥

यत्राण्डसङ्घा नितरां भ्रमन्ति,
सहैव खे भूमिरजांसि यद्वत् ।
तस्यात्मनोऽचिन्त्यमहत्त्वशक्ते-
र्वेद प्रभुत्वं स तु कोऽस्ति लोके ।।२६।।

जिन श्रीकृष्ण परमात्मा में आकाश में भूमि की रजों के सदृश ब्रह्माण्डों के समूह निरन्तर भ्रमण करते हैं, सबके आत्मा उन श्रीकृष्ण की अचिन्त्य और महत्वशक्ति के प्रभाव को जान सके ऐसा लोक में कौन है? अर्थात् कोई नहीं ॥२६॥

यच्छक्तियोगाद् द्रुहिणो विधातृ-
सञ्ज्ञां हि लेभे जगतो विधानात् ।।
अचिन्त्यशक्तेः परमस्य सोऽपि
ज्ञातुं न शक्तो महिमार्णवान्तम् ।।२७।।

जिन श्रीकृष्ण की शक्ति के योग से ब्रह्मा संसार की रचना कर "विधाता" संज्ञा को प्राप्त हुए, वह ब्रह्मा भी अचिन्त्यशक्ति

परमात्मा श्रीकृष्ण की महिमा के समुद्र का अन्त जानने में समर्थ नहीं हैं॥२७॥

यच्छक्तिलेशेन शिवोऽपि लोके
संहारकर्ता जगतः प्रसिद्धः ।।
मुकुन्द ! तेऽद्यापि महत्त्वपारं
ज्ञातुञ्च गन्तुं कथमप्यशक्तः ।।२८।।

जिन श्रीविष्णु भगवान् की शक्ति के लेश से लोक में शिवजी "संहारकर्त्ता" इस नाम से प्रसिद्ध हैं, वह शिवजी भी हे मुकुन्द ! (मुक्तिदाता) आपके महत्व का पार पाने तथा जानने में सर्व प्रकार से असमर्थ हैं॥२८॥

वायुश्च यच्छक्तियुतो वलीयान्
वृक्षादिमुत्पाटयितुं समर्थः ।।
त्वामन्तरेणाथ स एव नाभू-
त्तुच्छं तृणं चालयितुं समर्थः ।।२९।।

बलवान् वायु भी जिन (आप) की शक्ति से युक्त हो वृक्षादिकों के उखाड़ने में समर्थ है, वही (वायु) आपकी इच्छा बिना तुच्छ घास के तिनके को भी चलाने में समर्थ नहीं हो सका॥२९॥

अग्निश्च यच्छक्तियुतो हि विश्वं
दग्धुं समर्थः स हि तां विना तु ।
किञ्चित्तृणं नापि ददाह तस्मा-
दचिन्त्यशक्तिं श्रुतयस्तमाहुः ।।३०।।

जिनकी शक्ति से युक्त अग्नि सब जगत् को भस्म करने में

समर्थ है, वह (अग्नि भी उन श्रीकृष्ण की शक्ति के बिना छोटे से तिनके को भी नहीं जला सका। इसी से श्रुतियाँ श्रीकृष्ण को अचिन्त्यशक्ति कहती हैं॥३०॥*

यस्येव शक्त्यंशयुतो रथस्थः
प्रकाशते कृत्स्नमिदं हि सूर्यः ।।
द्विजैस्त्रिसन्ध्यं परिपूज्यमानः
सोऽनन्तशक्तिर्हरिरेव ध्येयः ।।३१।।

जिनकी शक्ति के अंश से युक्त सूर्य रथ में स्थित हो समस्त जगत् को प्रकाशित करता और द्विजों (ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्यों) द्वारा तीनों काल में सन्ध्यावन्दनादि से परिपूजित होता है, वह अनन्तशक्ति श्रीहरि मुक्षुक्षुओं का निश्चय ही ध्येय हैं॥३१॥

जीवश्च माया परमात्मशक्ति-
स्तथा तृतीयाऽपि च कर्म सञ्ज्ञा ।।
याऽनाद्यविद्या खलु यन्नियम्या-
स्तिस्रोऽपि विष्णुः स हि सर्वसेव्यः ।।३२।।

जीव (चेतन), माया, तथा कर्मसंज्ञक अनादि अविद्या तृतीया शक्ति, ये तीनों श्रीकृष्ण की नियम्य हैं। इससे वही विष्णु (सर्वनियन्ता) श्रीकृष्ण सबों के सेवनीय हैं॥३२॥

यो विश्वसृष्ट्यादिविभाजकश्च
स्वे स्वेऽधिकारे विनियोज्य जन्तून् ।।

---

* नोट--२९-३० श्लोक का तात्पर्य "केनोपनिषत्" के तृतीय खण्ड में देखो।

तत्कर्मणां प्रापयिता फलानां
कालाख्यशक्तिर्हरिरेव सोऽर्च्यः ।।३३।।

जो जीवों को अपने अपने अधिकार में नियुक्त कर विश्व की सृष्टि का विभाग करते हैं, तथा उनके कर्म फलों को प्राप्त कराते हैं, वह काल नामक शक्तिस्वरूप श्रीहरि सबों के पूजनीय हैं॥३३॥

परा हि शक्तिर्विविधा परस्य
स्वाभाविकी चेति मुकुन्दशक्तेः ।।
स्वाभाविकत्वं कथयद्धि शास्त्रं
मिथ्यात्ववादं तु तिरस्करोति ।।३४।।

"पराऽस्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च" यह शास्त्र (श्रुति) श्रीमुकुन्द भगवान् की बहुत प्रकार की परा शक्ति को स्वाभाविकी कहता हुआ मिथ्या कहने वाले के मत को तिरस्कार करता है॥३४॥

शास्त्रात्परत्वं परमात्मशक्ते-
रचिन्त्यतां सत्त्वमनन्ततां च ।।
ज्ञात्वा महान्तः कवयश्च कात्स्न्र्य
वक्तुन शक्ता विरमन्ति यत्नात् ।।३५।।

शास्त्र से परमात्मा श्रीकृष्ण की शक्ति को पर अचिन्त्य, अनन्त तथा सत्य जानकर बड़े-बड़े कविलोग उसको सम्पूर्ण कहने में असमर्थ हैं, उसके प्रयत्न से निवृत होते हैं॥३५॥

वीर्याणि विष्णोर्न हि कोऽपि लोके
प्रावोचदेवं श्रुतिराह नूनम् ।।
रजांसि भूमेर्गणयेत् सुधीर्यः
कविः कथञ्चिद्विबुधायुषाऽपि ।।३६।।

यद्यप्यनन्ता हि गुणाः परस्य
वक्तुं न शक्याश्च गिरा विधातुः ।।
तथापि भक्तैः परिकीर्त्तनीयाः
श्रुता हि शास्त्रेण निरूपिता ये ।।३७।।

श्रीविष्णु भगवान् के वीर्यो (गुणों) को लोक में किसी ने भी नहीं कहा, यह श्रुति सत्य कहती है। यदि किसी प्रकार देवताओं की आयु को धारण कर कोई विद्वान् कवि पृथ्वी की रजों को गिन भी ले, किन्तु पर (श्रीकृष्ण) के अनन्त गुणों को विधाता की वाणी से भी नहीं कह सकता है। तथापि भगवद्भक्तों को शास्त्र में निरूपित तथा महात्माओं से श्रुत (सुने हुए) भगवद्गुणों का अवश्य कीर्तन करना चाहिए ॥३६-३७॥

गुणाः शरण्यस्य प्रसादताया-
मुपायभूताः कथिता हि शास्त्रे ।।
ये ते त्ववश्यं भगवत्प्रपन्नै-
र्नित्यं मनोज्ञाः परिचिन्तनीयाः ।।३८।।

शास्त्र में जिन भगवद्गुणों को शरण्य (शरणे साधुः श्रीकृष्ण) की प्रसन्नता में उपायरूप कहा है, उन मनोज्ञ (सुन्दर) भगवद्गुणों का भगवद्भक्तों को अवश्य चिन्तन करना चाहिये॥३८॥

विध्याद्यन्त्यजतिर्यगन्तजगतस्तुल्यः शरण्यो हरिः
सर्वस्येति वचो ययाह शरणं कृष्णं भजेद्रक्षणात् ।।
ध्येया सैव शरण्यता भगवतो नित्यं प्रपन्नैर्जनैः
सर्वं कृत्यमपास्य तस्य वचने विश्वस्यतामन्तिमे ।।३९।।

श्रीभगवान् के जिस सर्वशरण्यता-(सबको शरण में रखना)

गुण से ''सर्वस्य शरणं सुहृत्'' श्रीहरि सबके शरण और सुहृत् हैं। यह वचन कहता है कि श्रीहरि विधि (ब्रह्मा) से लेकर अन्त्यज तथा तिर्य्यक् योनियों के जीव पर्य्यन्त समस्त जगत् के तुल्य शरण्य हैं। अतः रक्षण करने से मुमुक्षु रक्षक श्रीकृष्ण का भजन करें। भक्तों को नित्य भगवान् की वही (उक्त) सर्वशरण्यता का ध्यान करना चाहिये। भक्त सब कृत्य को छोड़कर ''सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज'' श्रीभगवान् के इस अन्तिम वाक्य में विश्वास करें॥३९॥

कृष्णं प्रति प्राह निजां मुकुन्दः
सत्यप्रतिज्ञां विपिने च रामः ।।
न तु प्रतिज्ञामिति जानकीं च
सत्यप्रतिज्ञां स्मर तां मुरारेः ।।४० ।।

द्रौपदी के प्रति मुकुन्द श्रीकृष्ण भगवान् ने कहा है कि ''पतेद् द्यौर्हिमवान् शीर्येत् पृथ्वी शकली भवेत्॥ शुष्येत्तोयनिधिः कृष्णे ! न मे मोघं वचो भवेत्। हे कृष्णे ! यदि स्वर्ग का पतन हो, हिमाद्रि फटे, पृथ्वी टूक-टूक हो, समुद्र सूखे, तथापि मेरा वचन मिथ्या नहीं होता है। एवं वन में श्रीरामचन्द्रजी ने श्रीजानकीजी से भी कहा है कि ''अय्यंहं जीवितं जह्यां त्वं वा सीते ! सलक्ष्मणाम्॥ नतु प्रतिज्ञां संश्रुत्य ब्राह्मणेभ्यो विशेषतः'' हे जानकी ! मैं जीवन का त्याग करूँ, मेरा ओर लक्ष्मण का त्याग करूँ, किन्तु प्रतीज्ञा का त्याग नहीं कर सकता उसमें विशेषतः ब्राह्मणों के लिये। तथा अर्जुन के प्रति ''न मे भक्तः प्रणश्यति'' मेरे भक्त का नाश नहीं होता है, इत्यादि भगवान् ने अपनी सत्य प्रतिज्ञा कही है, मुरारि श्रीकृष्ण की उस सत्य प्रतिज्ञा का हे भक्त ! तुम स्मरण करो॥४०॥

पूर्णात्पूर्णमदुच्यते इति वचः श्रौतं जगौ पूर्णतां
श्रीकृष्णस्य परात्मनो भगवतो नित्याप्तकामस्य वै ।।
कृत्वा चापचितिं न वाञ्छति यया सर्वोपकारं सदा
सैवेयं परिपूर्णताऽखिलगुरोर्ध्येया प्रपन्नैः सदा ।।४१।।

"ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते" यह वेद वचन सर्वदा प्राप्ति काम (सब कामों से परिपूर्ण) परमात्मा श्रीकृष्ण की पूर्णता का गान करता है, जिस परिपूर्णता से भगवान् श्रीकृष्ण सबका उपकार करके भी आप किसी से उपकार की इच्छा नहीं करते हैं। प्रपन्नों से सदा अखिलगुरु श्रीकृष्ण की उसी परिपूर्णता का ध्यान करना चाहिए॥४१॥

यो वै स्वल्पकृतां जनस्य मनुते भक्तस्य पूजां बहु
स्वल्पैरर्च्य इति स्मृतिर्वदति तं कृष्णं यया माधवम् ।।
तां श्रीकृष्णकृतज्ञतां हृदि धियाऽनन्यः स्मरेन्नित्यदा
यामाश्रित्य विहाय कर्मनिगडं पूर्वे गतास्तत्पदम् ।।४२।।

जो श्रीकृष्ण भक्तजनों की की हुई अल्पपूजा को भी बहुत करके मानते हैं, इसी कृतज्ञता से माधव श्रीकृष्ण भगवान् "स्वल्पैरर्च्य" भक्तों की अल्पपूजा से तुष्ट होते हैं, यह स्मृति कहती है। भगवान् की जिस प्रतिज्ञा का आश्रय कर पूर्व भक्तजन कर्मबन्धनों मो तोड़ तत्पद (श्रीविष्णुपद) को प्राप्त हुए हैं। अतः अनन्य भक्त श्रीकृष्ण की उस कृतज्ञता का हृदय में नित्य प्रति स्मरण करें॥४२॥

ब्रह्मादयोऽपि न विदुः पदवीं यदीयां
यस्माच्च दुर्लभतरो न परोऽस्ति कश्चित् ।।
सो लभ्यते हि तदनुग्रहलेशयोगात्

सौलभ्यमीश्वरगुणं हृदि भावयेत्तम् ।।४३ ।।

ब्रह्मादि देव भी जिसकी पदवी (मार्ग) को नहीं जानते हैं, जिससे अत्यन्त दुर्लभ "पर तत्त्व" कोई नहीं है, वह परमात्मा श्रीकृष्ण अपने अनुग्रह के जरा से योग से प्राप्त होते हैं। अतः भक्त श्रीकृष्ण के उस सुलभता गुण की हृदय में भावना करें॥४३॥

यः स्वाननन्यशरणानवतीह सर्वान्
स्वस्वामितामवकलय्य भयादशेषात् ।।
उद्धारकश्च भवसागरतोऽपि तस्य
स्वाम्यं सदैव हृदि कृत्य सुखं रमेत ।।४४ ।।

जो भगवान् श्रीकृष्ण अपने स्वामित्व को विचारकर सम्पूर्ण भय से अपने अनन्य शरण (श्रीकृष्णैक शरण) भक्तों की रक्षा करते हैं और संसार सागर से भी उद्धार करते हैं। अतः भक्त श्रीकृष्ण की उस स्वामिता को हृदय में रखकर सुख पूर्वक विचरे॥४४

यः कृत्वाऽपि च पापकर्म बहुशो भूयस्तु कृष्णं व्रजेत्
सद्यस्तं करुणावशेन वृणुते दोषान् विहायाखिलान् ।।
श्रीकृष्णः करुणां हि तस्य नितरां ध्यायेत्प्रपन्नो हरि
र्यामाश्रित्य गता मुकुन्दनिकटं पूर्वे प्रपन्ना जनाः ।।४५ ।।

जो बहुत से पापकर्मों को करके पुनः श्रीकृष्ण के शरण में आवें, तथापि हरि (भक्त पापहरी श्रीकृष्ण अपने करुणागुण के वश से उसके सब दोषों को त्याग (भूल) कर शीघ्र ही अंगीकार करते हैं। श्रीकृष्ण की जिस करुणा का आश्रय कर पूर्व भक्तजन श्रीमुकुन्द भगवान् के समीप अर्थात् भगवत्सामीप्य को प्राप्त हुए हैं श्रीकृष्ण की उस करुणा का प्रपन्न (भक्त-दास) सदा ध्यान करें॥४५॥

यद्यन्त्रितो हि भगवान् पुरुषोऽखिलज्ञो
ज्ञात्वाऽपि भक्तजनितानखिलापराधान् ।।
आच्छाद्य तं वृणुत आत्मन एव भक्तं
वात्सल्यमीश्वरगुणं हृदि भावयेत्तम् ।।४६ ।।

सर्वज्ञ आदि पुरुष भगवान् श्रीकृष्ण जिस गुण के आधीन हो भक्त के सब अपराधों को जानकर भी ढाँक देते हैं और अपने भक्त को अङ्गीकार करते हैं, भगवान् के उस वात्सल्य गुण की भावना भक्त सदा अपने हृदय में करें॥४६॥

सौशील्यमीश्वरगुणं स्मर विष्णुभक्त !
संश्लेषणं भगवतो यदि ते ह्यभीष्टम् ।
नीरन्ध्रयोगमभिवाञ्छति यद्वशेन
श्वादस्य जातिमनपेक्ष्य च माधवोऽपि ।।४७ ।।

हे विष्णु भक्त ! (वैष्णव) यदि तुमको श्रीभगवान् का आलिङ्गन करना अभीष्ट हो तो तुम भगवान् के सुशीलता गुण का स्मरण करो, जिस सुशीलता गुण के वश हो भगवान् श्रीमाधव जात्यादि महत्त्व की उपेक्षाकर श्वाद (श्वानमत्तीतिश्वादः अर्थात् श्वपच) के संग भी निष्कपट भाव से मिलने की इच्छा करते हैं॥४७॥

यद्वश्यतामुपगतः परमेश्वरोऽपि
स्वीयाश्रिताचरितपापफलस्य भोगम् ।।
शक्नोति नैव परिद्रष्टुमथैव सोढुं
तं मार्दवं भगवतो भजत प्रपन्नाः ।।४८ ।।

जिस गुण के वश हो परमेश्वर श्रीकृष्ण अपने आश्रितो भक्तों के किये पापों के फल भोग को देख तथा सह नहीं सकते हैं,

भगवान् के उस मार्दव का हे भक्तों तुम सदा भजन करो ॥४८॥

यस्यासौ वशतः स्वकार्यमखिलं संत्यज्य तुष्टो हरि-
र्भृत्याभीष्टफलं ददाति सकलं विश्वस्य हेतुश्च सन् ।।
तं सौहार्द्गुणं समस्तसुहृदः कृष्णस्य गोपीपतेः
सर्वाभीष्टप्रदं निधाय हृदये भक्ताः सदा रक्षथ ।।४९ ।।

जो हरि श्रीकृष्ण विश्व के हेतु होकर भी जिस गुण के वश से तुष्ट हो अपने सब कार्य को छोड़कर सेवकों को समस्त वाञ्छित फल देते हैं, हे भक्तगण ! तुम सबके सुहृत् गोपीपति श्रीकृष्ण के उस सौहार्द्गुण को सदा हृदय में धारण कर उसकी रक्षा करो ॥४९॥

औदार्य्यं परमं गुणं गुणनिधेः कृष्णस्य लक्ष्मीपतेः
सर्वैश्वर्य्यपतेः प्रभोर्भजत हे दासा ह्यनन्या सदा ।।
येनासौ स्वजनाय मोक्षप्रभृतीन् कामान् ददातीश्वरः
स्वात्मानं च तथाऽपि नातिमनुते दत्तं मयेत्यच्युतः ।।५० ।।

हे अनन्य भगवद्भक्तगण ! तुम कल्यागुणों के समुद्र, लक्ष्मीपति एवं समस्त ऐश्वर्य के अधिपति प्रभु श्रीकृष्ण के उस उदारता नामक परम गुण का सदा भजन करो जिस (उदारता गुण से ईश्वर (कर्तुमकर्तुमन्यथा कर्तुं समर्थः) श्रीकृष्ण अपने जनों को मोक्षपर्य्यन्त सब कामों को देते हैं, तथापि अच्युत श्रीकृष्ण "मैंने दिया" यह अभिमान नहीं करते हैं ॥५०॥

श्रीविष्णोः स्मर कौशलं शुभमते ! तद्यत्प्रभावादसौ
वैचित्र्यं जगतः सनामवपुषः सर्वस्य वै व्याकरोत् ।।
स्वे स्वे कर्मणि तस्य तस्य च रतिं विस्तारयंस्तत्फलं
तं तं भोजयति स्वयं तु न कदा तत्कर्मभिर्लिप्यते ।।५१ ।।

जिसके प्रभाव से यह भगवान् श्रीकृष्ण नाम तथा रूप सहित समस्त जगत् का विभाग करते हैं और अपने-अपने कर्म में उन-उन मनुष्यों का आसक्ति का विस्तार कराते हुए उन-उन को उसके फल का भोग कराते हैं, किन्तु स्वयं (आप) कभी उनके कर्मों से लिप्त नहीं होते हैं, हे शुभमते ! भक्त ! तुम श्रीविष्णु भगवान् के उस कौशल गुण का स्मरण करो॥५१॥

स्वातन्त्र्यमाहास्य परस्य वेदः
स्वतन्त्र इत्यादि वशीति चैव ।।
जगत्तदायत्तमिदं हि येन
तदेव नित्यं मनसा स्मरामि ।।५२ ।।

"सर्वस्य वशी, एष परमः स्वतन्त्रोऽधिगुणः" इत्यादि वेद वाक्य पर (श्रीकृष्ण) को स्वतन्त्र कहते हैं, जिस स्वतन्त्रता गुण से यह जगत् श्रीकृष्ण के अधीन है, मैं (भक्त) भगवान् की उस स्वतन्त्रता का नित्य मन से स्मरण करता हूँ॥५२॥

येनावगाह्यं नहि तस्य कृत्यं
कृष्णस्य ब्रह्मेशमुखैर्हि देवैः ।।
गाम्भीर्यमीशस्य तदेव नित्यं
तद्भक्तियुक्तैः परिचिन्तनीयम् ।।५३ ।।

जिस गाम्भीर्य गुण से ब्रह्मा शिवादि देवता भी श्रीकृष्ण के कृत्य की थाह नहीं पाते हैं, ईश श्रीकृष्ण के उस गाम्भीर्य गुण का भगवद्भक्तों को सदा चिन्तवन करना चाहिए॥५३॥

स्वात्मेतरान् धर्षति येन देवो
धृष्यो न कस्याऽपि निजप्रभावात् ।।

प्रागल्भ्यमीशस्य तमेव नित्यं
गुणं प्रगल्भस्य भजामि बुद्ध्या ।।५४।।

जिस गुण के द्वारा श्रीकृष्ण निज प्रभाव से अपने से अन्धों को धर्षित करते हैं, किन्तु स्वयं किसी से धर्षित नहीं होते हैं, प्रगल्भ ईश श्रीकृष्ण के उस प्रगल्भता रूप गुण का मैं (भक्त) सदा बुद्धि से भजन करता हूँ।।५४।।

समोऽहमित्याह परः पराणां
पार्थाय कृष्णो हि गुणेन येन ।।
रागादिशून्यस्य गुणं भजामि
तमार्जवं श्रीव्रजभूषणस्य ।।५५ ।।

जिस स्वगुण से परों में भी पर अर्थात् परतम श्रीकृष्ण ने कहा है कि- 'देव-मनुष्य-पशु-तिर्यगादि सब प्राणियों के भजनीय तथा अन्तर्यामि रूप से तुल्य हूँ, रागादि रहित व्रजभूषण श्रीकृष्ण के उस आर्जव गुण का मैं (भक्त) भजन करता हूँ।।५५।।

हर्त्तुं चिकीर्षति यया हि जनस्य दुःख-
माख्यायते च भगवान् परमो दयालुः ।।
निर्हेतुकोऽपि मनसा भगवद्दयां तां
नित्यं स्मरामि जगतो जनकस्य विष्णोः ।।५६ ।।

जिस दया नामक गुण से भगवान् श्रीकृष्ण निर्हेतुक (बिना प्रयोजन) ही अपने भक्त का दुःख दूर करने की इच्छा करते है, उसी से शास्त्र में भगवान् को परम दयालु कहा है, जगत् के जनक (पिता) श्रीविष्णु भगवान् की उस दया का मैं (भक्त) नित्य मन से स्मरण करता हूँ।।५६।।

सर्वापराधं सहते जनानां
सर्वेश्वरः सर्वगुरुर्ययैव ।।
तां क्षान्तिमीड्यां पुरुषोत्तमस्य
स्मरामि नित्यं व्रजवल्लभस्य ।।५७।।

जिस गुण से सर्वगुरु सर्वेश्वर श्रीकृष्ण भक्तों के सब अपराधों को सहन करते हैं, व्रजवल्लभ पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण के उस ईड्य (स्तुत्य) क्षान्ति गुण का मैं नित्य स्मरण करता हूँ।।५७।।

समस्तकालादिगतस्य वस्तुनो
ज्ञानेन येनाह हरिर्हि वाक्यम् ।।
सर्वज्ञ इत्यादि जगन्निवासं
तं कृष्णसर्वज्ञमहं भजामि ।।५८।।

जिस समस्त कालादिगत वस्तु के ज्ञान से "एष सर्वज्ञ" इत्यादि वेद वचन श्रीकृष्ण को सर्वज्ञ कहते हैं, उस जगन्निवास सर्वज्ञ श्रीकृष्ण का मैं भजन करता हूँ।।५८।।

ययाऽनघं कार्यमशेषमेत-
द्विघट्यते श्रीपुरुषोत्तमेन ।।
स्वाभाविकीं तां परमात्मशक्तिं
स्वरूपगां वै प्रणमाम्यनन्ताम् ।।५९

जिस शक्ति के द्वारा न होने वाले भी सब कार्य श्रीपुरुषोत्तम से होते हैं, परमात्मा श्रीकृष्ण की उस स्वरूप गत, अतएव स्वाभाविकी अनन्तशक्ति के मैं प्रणाम करता हूँ।।५९।।

धृतं हि विश्वं परमेश्वरेण
स्वाभाविकेनात्मगुणेन येन ।।

तस्मै परेशस्य महाविभूते-

र्बलाय नित्याय नमो गुणाय ।।६०।।

जिस स्वाभाविक निज गुण से परमेश्वर श्रीकृष्ण ने विश्व को धारण किया है, महाविभूति परेश श्रीकृष्ण के उस बल रूप नित्य गुण को नमस्कार है।।६०।।

ऐश्वर्य्यरूपेण गुणेन येन

सर्वेश्वरं प्राह वचो मुकुन्दम् ।।

स्वाभाविकं तं भगवद्गुणं वै

भजामि नित्यं पुरुषोत्तमस्य ।।६१।।

जिस ऐश्वर्य गुण से मुकुन्द श्रीकृष्ण को वेद वचन सर्वेश्वर कहते हैं, भगवान् श्रीपुरुषोत्तम के उस स्वाभाविक ऐश्वर्य गुण का मैं नित्य भजन करता हूँ।।६१।।

जाते समस्ते श्रमकारणेऽपि

न जायते येन श्रमो मुकुन्दे ।।

स्वाभाविकं तं पुरुषोत्तमस्य

परं गुणं वीर्य्यमहं भजामि ।।६२।।

जिस गुण से समस्त श्रम का कारण उपस्थित होने पर भी मुकुन्द श्रीकृष्ण को श्रम नहीं होता है, श्रीपुरुषोत्तम के उस वीर्य्य नामक स्वाभाविक श्रेष्ठ गुण का मैं भजन करता हूँ।।६२।।

विश्वं पराभवति यो निजतेजसैव

न स्वं पराभवमुपैति कदाऽपि कैश्चित् ।।

तेजस्तदेव परमं पुरुषोत्तमस्य

नित्यं नमामि मनसा गुणमीश्वरस्य ।।६३।।

जो श्रीकृष्ण अपने तेज से विश्व का पराभव करते हैं, किन्तु आप कदापि किसी से पराभूत नहीं होते हैं, ईश्वर श्रीपुरुषोत्तम के उस ''तेज'' नामक परम गुण को मैं नमस्कार करता हूँ॥६३॥

समग्रमैश्वर्य्यमथो यशः श्री-
र्ज्ञानं च धर्मश्च तथा विरागः ।।
नित्या भगाः श्रीब्रजभूषणस्य
कृष्णस्य ध्येयाः सततं प्रपन्नैः ।।६४।।

समस्त-ऐश्वर्य्य, यश, श्री, ज्ञान, धर्म, तथा विराग ये छः ''भगसंज्ञक'' ब्रजभूषण श्रीकृष्ण के नित्य गुणों का प्रपन्न सदा ध्यान करें॥६४॥

(उक्त छः गुण भगवच्छब्द के वाच्य हैं अर्थात् उक्त छः नित्य गुणों के होने से ही श्रीकृष्ण की भगवान् संज्ञा है। अब उनके अर्थ कहते हैं।)

ऐश्वर्य्यमस्य जगतो यमनं हि नित्यं
ज्ञानं समग्रविषयस्य सदानुभूतिः ।।
सर्वाघहं परममङ्गलकं यशश्च
सेतुर्जगद्विधरणः परमश्च धर्मः ।।६५।।

इस जगत् का नित्य नियमन करना ''ऐश्वर्य'' है। सदा सर्व विषय का अनुभव होना ''ज्ञान'' है। भक्तों के सब पापों का नाश करना यह परममंगलरूप ''यश'' है। जगत् का विधरणरूप परम सेतु (पुल) ''धर्म'' है॥६५॥

यस्या दयार्द्रनयनस्य कटाक्षलेशं
वाञ्छन्ति ब्रह्मशिवमुख्यसुराश्च सा श्रीः।।

आत्मातिरिक्तविषये न रतिः कदाचि-
द्वैराग्यमस्य व्रजजीवनसुन्दरस्य ।।६६।।

ब्रह्मा तथा शिवादि देवगण भी जिसके दयार्द्र नयन के कटाक्षलेश की वाञ्छा करते हैं, वही ''श्री'' है। व्रजजीवन सुन्दर श्रीकृष्ण का निज स्वरूप से अन्य विषय में कभी भी रति न होना ''वैराग्य'' है॥६६॥

षण्णां गुणानां भगसञ्ज्ञितां हरे-
र्ध्यानं मुमुक्षुः सततं सुमङ्गलम् ।।
कुर्वन्प्रसादं लभतेऽञ्जसा बुध-
स्तस्मिंश्च लब्धे किमलभ्यमस्ति हि ।।६७।।

बुध मुमुक्षु हरि श्रीकृष्ण के भगसञ्ज्ञक छः गुणों का मंगल ध्यान निरन्तर करते हुण सहज ही में श्रीकृष्ण के प्रसाद को प्राप्त होते हैं और भगवान् की प्रसन्नता होने पर इस जगत् में कुछ भी अलभ्य नहीं रहता है॥६७॥

ध्यायेन्मुमुक्षुरनिशं निजमंगलाय
श्रीमन्मुकुन्दवपुषं ललितं वरेण्यम् ।।
यद्ध्यानतो हि बहवो भगवत्समीपं
संवृश्च्य कर्मनिगडं निजमञ्जसेताः ।।६८।।

मुमुक्षु अपने कल्याण के लिये निरन्तर वरेण्य श्रीमुकुन्द भगवान् के सुन्दर विग्रह का ध्यान करें, जिस के ध्यान से भक्त सहज ही में अपने कर्म बन्धन को छेदन कर श्रीमुकुन्द के सामीप्य को अर्थात् भगवद्धाम को प्राप्त होते हैं॥६८॥

सदानन्दाकारं सजलजलदश्यामलरुचिं
तडिद्वासो दिव्याभरणमरविन्दामलदृशम् ।।
सुगन्धासंपृक्तत्रिविधमरुता सेवितमजं
द्विबाहुं श्रीवन्यस्रजमखिलसौन्दर्यभवनम् ।।६९ ।।
(४) दे०
स्थितं मूले वृन्दावनभुवि सुरद्रोरधिपतिं
जनानां संस्तुत्यं विधिशिवसुराद्यैश्च मुनिभिः ।।
वयस्यैर्गोगोपीजनपरिवृतं चात्मसुहृदं
हृदि ध्याये कृष्णं सकलदुरिताकर्षकमहम् ।।७० ।।

सदानन्द स्वरूप, जल सहित मेघ के समान श्याम कान्तिमान्, विजली के समान दिव्य वस्त्रालङ्कारों से युक्त, स्वच्छ कमल के तुल्य नेत्र वाले, तीन प्रकार (शीतल, मन्द और सुगन्ध) के वायु से सेवित, अजन्मा, द्विभुज, समस्त सुन्दरता के भवन, वृन्दावन की भूमि में कल्पवृक्ष के मूल में स्थित, समस्त जनों के अधिपति, ब्रह्मा-शिवादि देव तथा मुनियों से संस्तुत्य सखा तथा गौएँ और गोपीजनों से वेष्टित, जीवात्माओं के सुहृद्, सब पापों के नाशक, श्रीवृन्दावन के फूलों की माला से युक्त श्रीकृष्ण का मैं हृदय में ध्यान करता हूँ।।६९-७०।।

लावण्यं सुकुमारतामधुरतासौगन्ध्यसुस्पर्शते
सौन्दर्यातिसुमार्दवं च मनसां हारित्वमावश्यता ।।
इत्याद्या बहवोऽस्य दिव्यवपुषि श्रीधाम्नि नित्या गुणा
ध्यातृणां सकलार्थदे सुरतरौ चित्तं मदीयं विशेत् ।।७१ ।।

लावण्यता, सुकुमारता, मधुरता, सौगन्ध्य, सुस्पर्शता,

सुन्दरता, अतिमृदुता-अवश्यता इत्यादि मन के हरण करने वाले बहुत से नित्य गुण श्रीकृष्ण के शोभा धाम दिव्य विग्रह में हैं, ध्याता (भक्त) को कल्पतरु के सदृश सर्वाभीष्टप्रद श्रीकृष्ण के दिव्य विग्रह में मेरे चित्त का प्रवेश हो। यह कवि की भगवान् से प्रार्थना है॥७१॥

सञ्चिन्तयामि भगवच्चरणारविन्दम्
रुद्रादिदेवनिकरैर्नितरां विचिन्त्यम्॥
लक्ष्म्या निजाश्रितजनैश्च सदैव सेव्यं
गोपीजनस्य कुचकुङ्कुमरागरक्तम्॥७२॥

गोपियों के कुचों में लगी हुई केशर के राग से रक्त, रुद्रादि देवगणों द्वारा निरन्तर चिन्तनीय, श्रीलक्ष्मी तथा निजाश्रित (वैष्णव) जनों से सेव्य श्रीकृष्ण के चरणकमलों का मैं ध्यान करता हूँ॥७२॥

यं योगिनश्च मनसा हृदये निधातुं
वाञ्छन्ति योगविधिभिः परिशोध्य चित्तम्॥
तं वै मुमुक्षुशरणं सकलार्त्तिहारं
ह्यानन्दकन्ददमहं परमार्थमीडे॥७३॥

योगिजनों योग विधि से चित्त को शुद्ध कर जिस चरणारविन्द को हृदय में धारण करने की इच्छा करते हैं, श्रीकृष्ण के उस मुमुक्षु का शरण, सर्वदुःखनाशक, आनन्दकन्द को देने वाले परमार्थ स्वरूप चरणारविन्द की मैं स्तुति करता हूँ॥७३॥

सञ्चिन्तयामि हरिपादतलं मनोज्ञं
रक्तं तदाश्रितजनस्य च प्रेमरागैः॥
वज्रांकुशध्वज सरोजदरादिलक्ष्म-
प्रत्यञ्चितं स्वहृदये परिशोभमानम्॥७४॥

मैं भगवदाश्रित (वैष्णव) जनों के प्रेमरागों से रक्त, वज्र, अंकुशध्वजा-कमल-तथा शंखादि (आदि पदसे-चक्र-अर्द्धचन्द्र ऊर्ध्वरेखा, गोष्पद-जम्बू, यव-स्वस्तिक, छत्र, कुम्भ, ख त्रिकोण चाप-मत्स्य का ग्रहण है) चिह्नों से पूजित, अपने हृदय में (स्वहृदये इस पद से कवि का भाव निज तथा सब भक्तों के हृदय से है) सुशोभित, श्रीहरि के मनोज्ञ (सुन्दर) पादतल का ध्यान करता हूँ॥७४॥

संचिन्तयामि पदकल्पतरोश्च शाखा
अङ्गुल्य एव शुभगत्वयुता मुरारेः ।।
मुक्ताङ्गुलीयकफलैर्नखचन्द्रपत्रै-
राढ्यो हि ध्यातृमनसस्तमसो विधूत्यै ।।७५ ।।

मैं मुरारि के कल्पवृक्ष स्वरूप चरणों की शाखाओं का ध्यान करता हूँ, जिन (शाखाओं) में ध्याता (ध्यान करने वाला भक्त) के मन के अन्धकार को नाश करने में आढ्य (समर्थ) और चन्द्र के समान नखों के वाहन स्थानीय मोतियों के छल्लों द्वारा शुभगमन करने वाली अँगुलियां हैं॥७५॥

गुल्फारविन्दकलिकां व्रजभूषणस्य
सञ्चिन्तयामि मनसा ह्युपमावियुक्ताम् ।।
मञ्जीरपृक्तमणिभिर्निजकेशरैश्च
युक्तां च सुन्दरतरां सुखदां निजानाम् ।।७६ ।।

मैं व्रजभूषण श्रीकृष्ण की उपमारहित, अतिशय सुन्दर एवं भक्तों को सुख देने वाली तथा नूपुरों में लगी हुई मणियों से और अपने केसरों से युक्तः कमल की कली के समान गुल्फों (टकने) का

मन से ध्यान करता हूँ॥७६॥

जङ्घाद्वयं भगवतो मनसा स्मरामि
ध्यातुर्मनोमलहरं विमलं द्युमद्युत्॥
स्तम्भं यथा सितमणेर्मुकुरायमानं
संदृश्यते सुमनसां जनयन्प्रमोदम्॥७७॥

मैं श्रीकृष्ण भगवान् के ध्याता के मन का विकार दूर करने वाली, विमल अतएव द्युमद्युत् (अत्यन्त प्रकाश मान) जांघों का मन से स्मरण करता हूँ। जो जांघें देवताओं को सुख उपजाती हुई श्वेत मणि के खंभों के समान दीखती हैं॥७७॥

संचिन्तयामि मनसा हरिजानुयुग्मं
पीताम्बरेण सहितं कनकप्रभेण॥
युक्तं रवैश्च प्रभया ध्रुवयेव दिव्यं
नीलाम्बुजं च रमणीयममन्दशोभम्॥७८॥

मैं श्रीहरि के सुवर्ण के तुल्य कान्ति वाले पीताम्बर से युक्त तथा सूर्य की ध्रुवा कान्ति से युक्त, रमणीय और अतिशय शोभायमान नील कमल के समान दिव्यजानुओं (घुटनों) का मन से ध्यान करता हूँ॥७८॥

ऊरूद्वयं भगवतः पुरुषोत्तमस्य
संचिन्तयामि मनसा रमणीयवेषम्॥
यच्चिन्तनेन सततं मनसो विकारो
निर्याति कामजनितो विषयप्रसङ्गात्॥७९॥

जिसके निरन्तर ध्यान करने से काम से उत्पन्न मन का विकार विषय (काम भोग) के प्रसङ्ग से निवृत्त (रहित) होता है,

भगवान् श्रीपुरुषोत्तम के रमणीय वेष उन उरूओं का मैं मन से ध्यान करता हूँ॥७९॥

नित्यं निजाश्रितजनान्प्रति रौति या वै
ध्यातुर्हि मां भवभयं न कुतश्चिदस्ति ।।
काञ्चीरवेण नितरां व्रजनायकस्य
तां सुन्दरां कटिमहं मनसा स्मरामि ।।८०।।

व्रजनायक श्रीकृष्ण की जो कटि (कमर) कोंधनी के शब्द से अपने आश्रित भक्तजनों के प्रति नित्य पुकार के कहती है, कि मेरा ध्यान करने वाले को कभी भी संसार का भय नहीं होता है, मैं भगवान् की उस कोंधिनी के शब्द से सुन्दर कटि का मन से स्मरण करता हूँ॥८०॥

ध्यायेम नाभिसर उत्तमपूरुषस्य
यज्जातपद्मजनिरात्मनिदानभूमिम् ।।
ज्ञातुं सनालमपि वर्षसहस्रमृच्छ-
न्तन्नाध्यगच्छदरविन्दमितश्च भूयः ।।८१।।

मैं पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण के उस नाभिसर (सरोवर के तुल्य नाभि) का ध्यान करता हूँ, कि जिस नाभिसर से उत्पन्न ब्रह्माजी भी अपनी उत्पत्ति का कारण जानने को हजार वर्ष पर्य्यन्त नाभि सरोजात कमल नाल में भटके, किन्तु अन्त नहीं पाकर लौट आये॥८१॥

कुक्षिद्वयं भगवतः पुरुषस्य भूम्नः
संचिन्तयामि शरणं सरिताम्पतीनाम् ।।
यच्चिन्तनेन भवसागरपारमीया-
ज्जन्मादिदुःखरहितं परमात्मभक्तः ।।८२।।

मैं भूमा पुरुष भगवान् श्रीकृष्ण की समुद्रों की शरण उन कुक्षों का ध्यान करता हूँ, जिसके ध्यान से परमात्मा का भक्त (वैष्णव) जन्म मरण दुःख रहित संसार के पार को अर्थात् मुक्ति को प्राप्त होता है॥८२॥

यत्र प्रविश्य शयनं प्रलये चकार
यस्माच्च सृष्टिसमये कुरुते हि सृज्यम् ।।
ब्रह्मोत्थितस्तदुदरं पुरुषोत्तमस्य
सञ्चिन्तयामि सकलार्थभृतं गुणाढ्यम् ।।८३ ।।

प्रलय के समय ब्रह्माजी जिसमें शयन करते हैं और उत्पत्ति के समय ब्रह्माजी जिससे उत्पन्न हो सृष्टि की रचना करते हैं, पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण के उस समस्त अर्थो के धारण करने वाले गुणाढ्य उदर का मैं ध्यान करता हूँ॥८३॥

वक्षःस्थलं भगवतः कमलैकधाम
श्रीवत्सलक्ष्म पदलक्ष्म च यत्र भाति ।।
हारैर्युतं मणिमयैरपि वैजयन्त्या
गोपीदृगुत्सवकरं हृदि भावयामि ।।८४ ।।

जिस वक्षःस्थल में श्रीवत्स तथा भृगुपद का चिह्न शोभित है, जो वक्षःस्थल मणिमय हारों से तथा वैजयन्ती माला से युक्त है, श्रीकृष्ण के उस कमलानिवास एवं गोपियों के नयनों को आनन्द देने वाले वक्षःस्थल की मैं हृदय में भावना करता हूँ॥८४॥

हरेः कण्ठं ध्याये हृदि सुभगशङ्खाकृतिमहं
तुरीयं यत्तत्त्वं निगमकथितं कौस्तुभमणिः ।।
सदा जुष्टं तेन ह्यखिलमणिराजेन महसा
मनोरम्यं दिव्यं व्रजयुवतिनेत्राभिलषितम् ।।८५ ।।

वेद ने जिस कौस्तुभमणि को तुरीय मोक्ष तत्त्व कहा है, तेज से सब मणियों में श्रेष्ठ उस कौस्तुमणि से सदा सेवित, मनोरम, दिव्य, व्रजयुवतियों के नेत्रों को अभिलषित और सुन्दर शंख के समान आकृति वाले श्रीहरि के कण्ठ का मैं ध्यान करता हूँ॥८५॥

बाहू सनालकमलेव विराजमानौ
भोगीन्द्रभोगगजशुण्डतिरस्करौ च ।।
गोपीमनोजजनकौ व्रजसुन्दरस्य,
रत्नाढ्यभूषणयुतौ मनसा स्मरामि ।।८६ ।।

मैं व्रजनायक श्रीकृष्ण के नाल सहित कमल के समान विराजमान, शेष नाग की शरीर और हाथी की शुण्ड को तिरस्कार करने वाले, गोपियों को काम जनक और रत्न जटित भूषणों से भूषित भुजाओं का मन से स्मरण करता हूँ॥८६॥

हस्तौ च रक्ततलकौ पुरुषोत्तमस्य
नीलाब्जकान्तिनिवहौ च दलांगुलीकौ ।।
संसारभीतजनताभयदानदक्षौ
नित्यं स्मरामि मुरलीसहितौ मनोज्ञौ ।।८७ ।।

मैं पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण के रक्त के सदृश लाल तले वाले, नील कमल के समूह की कान्ति वाले, कमल पत्र के सदृश कोमल अंगुलियों से युक्त, मनोज्ञ मुरली सहित और संसार के भय से भीत जनों को अभयदान देने में कुशल हस्तों का नित्य स्मरण करता हूँ॥८७॥

रत्नाढ्यकङ्कणयुतौ व्रजभूषणस्य
गोपालदारककरैरभिमर्शनीयौ ।।

ब्रह्मादिदेवनिकरैर्न कथञ्चिदेव

सञ्चिन्तयामि कमनीयतरौ प्रकोष्ठौ ।।८८ ।।

ब्रह्मादि देव समूहों से किसी प्रकार स्पर्श नहीं, किन्तु गोपाल बालकों के करों से अभिमर्शनीय अत्यन्त कमनीय, और रत्न जटित कंकणों (कड़ों) से युक्त श्रीकृष्ण के प्रकोष्ठ का मैं ध्यान करता हूँ॥८८॥

स्कन्धौ च सुन्दरतरौ कनकोत्तरीयौ,

श्रीमाधवस्य नितरां हृदि चिन्तनीयौ ।।

श्रीराधिकासुललितोत्तमभूषणाढ्यौ,

बाहुश्च यत्र निहितो रमणेन तेन ।।८९ ।।

राधारमणविहारी भगवान् श्रीकृष्ण ने श्रीराधिकाजी के परम मनोहर उत्तम भूषण युक्त स्कन्ध-युगल पर अपनी भुजा रखी है ऐसे कनक-द्युति समान दिव्य पीताम्बर से सुशोभित अतिशय सुन्दर श्रीकृष्ण के स्कन्धों का भक्तों को अपने हृदय में निरन्तर ध्यान करना चाहिए॥८९॥

लावण्यधामचिबुकं व्रजराजसूनोः

सन्दर्शनीयमनिशं ब्रजसुन्दरीणाम् ।।

यद्ध्यायतां च सुखदं मनसोऽभिरामं

कामत्रयाभिजनकं तदहं स्मरामि ।।९० ।।

मैं व्रजराज सूनु श्रीकृष्ण के उस सन्दर्शनीय लावण्य धाम चिबुक का निरन्तर स्मरण करता हूँ, जो चिबुक व्रजसुन्दरियों को काम त्रयाभिजनक तथा ध्याता के मन को सुख देने वाला और मनोहर है॥९०॥

नित्यानन्दतरङ्गबृन्दमधुरालापादिभिः संभृतं
चेषद्धास्यसुधामयं सुदशनैः शुभ्रैश्च मुक्तामयम् ।।
सर्वाह्लादकताऽखिलेड्यतरता सामादिरत्नोद्भवं
ध्यायेऽहं सकलार्थदं हि भजतां श्रीकृष्णवक्राम्बुधिम् ।।९१ ।।

मैं श्रीकृष्ण के भक्तों को समस्त अर्थ देने वाले मुख समुद्र का ध्यान करता हूँ। जो मुख समुद्र नित्य आनन्द की तरंगों के समूह मधुर भाषणों से तथा अमृतमय-मन्द-मन्द हास्ययुत और मोतियों के समान उज्ज्वल दांतों से युक्त एवं सबको आह्लाद करना तथा अत्यन्त स्तुत्यता तथा सामादि चारों वेदरूप रत्नों का उद्भव (उत्पत्तिस्थान-अर्थात् खान) है॥९१॥

ओष्ठौ विद्रुमविम्बरागहरणौ नव्याम्रपत्रान्मृदू
पीयूषाढ्यतया मनोहरतमावक्षण्वतां सत्फले ।।
यौ गोपीमुखपर्चितौ च बहुशः प्रेम्णा हि रासोत्सवे
श्रीकान्तस्य मनोजगर्वदलनौ ध्याये रसज्ञस्य तौ ।।९२ ।।

मैं रसज्ञ लक्ष्मीपति श्रीकृष्ण के उन ओष्ठों का ध्यान करता हूँ, जो (ओष्ठ) मूंगे की कान्ति से अधिक लाल, आम के नये पत्तों से भी कोमल, अमृत युक्त होने से अत्यन्त मनोहर, आँख वालों का सत् (उत्तम) फल (अर्थात् आँख का फल यही है कि जब इन नेत्रों से भगवान् के ओष्ठ के दर्शन हों) रासोत्सव में प्रेम से अनेक बार गोपियों के मुखों से परिचुम्बित हुए और कामदेव के गर्व के नाशक हैं॥९२॥

नासां स्मरामि खलु कञ्जविलोचनस्य
ध्यातुर्मनोहरतमां शुकतुण्डतुल्याम् ।।

ध्यानादचिन्त्यफलदां परमेश्वरस्य

गोपीमनोनयनरागविवर्द्धनस्य ।।९३।।

गोपियों के मन और नयनों की प्रीति को बढाने वाले, कमललोचन परमेश्वर श्रीकृष्ण की तोता की चोंच के तुल्य अत्यन्त मनोहर और ध्याता (भक्त) को ध्यान करने से अचिन्त्य फल देने वाली नासिका का मैं स्मरण करता हूँ॥९३॥

गण्डस्थले भगवतो हृदि चिन्तायमि

श्रीमन्मुखेन्दुसुधया निभृते मनोज्ञे ।।

व्यालार्भकैरिव मुहुर्ह्यलकैर्निषेव्ये

भक्तैः श्रिया च नयनैः परिपीयमाने ।।९४।।

सांप के बच्चों के समान टेढे केशों से बारम्बार निषेव्य, श्रीकृष्ण के मुखचन्द्र की सुधा से नम्र अतएव मनोज्ञ, भक्त और श्रीलक्ष्मीजी के नयनों से परिपीयमान श्रीकृष्ण के गण्डस्थलों (कपोलों) का मैं हृदय में ध्यान करता हूँ॥९४॥

श्यामेऽतिमोदनिभृते नयनारविन्दे

सौन्दर्यशीलसमतादिरविप्रफुल्ले ।।

ध्यातुर्मनोहरतमे हृदि चिन्तयामि

कृष्णस्य पूर्णकरुणार्द्रदृशोऽतिरम्ये ।।९५।।

(५) दे०

पूर्ण करुणार्द्र दृष्टि श्रीकृष्ण के अतिरम्य, श्याम, अति मोद से निभृत, सौन्दर्य तथा शील-समतादिरूप सूर्य से प्रफुल्लित, ध्याता के मन को अत्यन्त हरण करने वाले नयनारविन्दों (कमल के सदृश नेत्रों) का मैं हृदय में ध्यान करता हूँ॥९५॥

जित्वा समस्तप्रकृतिं धनुषाऽगुणेन
भ्रूयुग्मकेन सहसा वशगां निधाय ।।
व्यङ्गैर्निजेक्षणशरैः सुविराजते या
तां चिन्तयामि भ्रुकुटिं मधुसुदनस्य ।।९६ ।।

मैं श्रीमधुसूदन की उस भ्रकुटि का ध्यान करता हूँ, जो (भ्रकुटि) गुण रहित अर्थात् बिना तांत के धनुष के समान भ्रूयुग्म से समस्त सिद्धि को जीत, अकस्मात् वश में करके अपने टेढे नेत्र बाणों से विराजमान है।।९६ ।।

कृष्णस्य कर्णयुगलं श्रवणेऽतिदक्षं
संप्रार्थितस्य निजभक्तजनेन नित्यम् ।।
युक्तञ्च कुण्डलयुगेन मणिप्रभेण
मीनोपमेन सततं हृदि चिन्तयामि ।।९७ ।।

मैं स्वभक्तजन से नित्य प्रार्थित श्रीकृष्ण के मीनाकृति और मणि के समान कान्ति वाले कुण्डलों से युक्त तथा भक्त की प्रार्थना सुनने में अतिकुशल कानों का निरन्तर अपने हृदय में ध्यान करता हूँ।।९७।।

ध्येयं ललाटपटलं पुरुषस्य भूम्नः
श्रीकौंकुमेन तिलकेन विराजमानम् ।।
पूर्णेन्दुसुन्दरतमं हृदि चिन्तयामि
लावण्यधाम खलु मन्मथमन्मथस्य ।।९८ ।।

मैं भूमा पुरुष श्रीमदनमोहन के पूर्णचन्द्र के समान अत्यन्त सुन्दर, केशर के तिलक से सुशोभित, लावण्य के धाम ललाट-पटल का हृदय में ध्यान करता हूँ।।९८।।

मूर्द्धानं पुरुषोत्तमस्य कुटिलैः स्निग्धश्च नीलैः कचै-
रापीडेन मयूरपिच्छरचितेनात्यद्भुतेनैव च ।।
जुष्टं काञ्चनदिव्यरत्नमणिभिर्देदीप्यमानेन तं
ध्येयं ब्रह्मशिवादिभिश्च सततं ध्यायेऽद्भुतं चेतसा ।।९९ ।।

मैं पुरुषोत्तमस्य के उस अद्भुत मस्तक का ध्यान करता हूँ, जो मस्तक बांके नील केशों से स्निग्ध है और मोरपंखों से बने हुए तथा जाम्बूनद सोने में जड़े दिव्य रत्न एवं मणियों से देदीप्यमान अद्भुत आपीड (मुकुट) से सेवित तथा ब्रह्मा-शिवादि देव गणों से निरन्तर ध्येय है ।।९९ ।।

श्रियः कान्तानन्ताखिलविधिसुराद्यैर्नुतपद!
प्रभोऽचिन्त्यैश्वर्य! ह्यनवधिसुखानन्तमहिमन्।।
सदा गोपीप्रेष्ठ ! स्वचरणरजोजोषणधियां
त्वमिष्टश्रेयोदः स्तुतिमिति गृहाणात्मकृपया ।।१०० ।।

हे श्रीकान्त ! हे अनन्त ! ब्रह्मादि समस्त देवगण आपके चरणों की स्तुति करते हैं। हे प्रभो ! हे अचिन्त्यैश्वर्य ! हे अनन्त सुख स्वरूप ! हे अनन्त महिमन् ! आपके चरणरज-सेवकों को सदा आप अभीष्ट श्रेय देते हैं हे गोपियों के अत्यन्त प्रिय ! श्रीकृष्ण अपनी कृपा के वश से इस (मुकुन्द महिमारूप मेरी की हुई) स्तुति को आप ग्रहण (अंगीकार) करो। यह कवि की श्रीभगवान् से प्रार्थना है ।।१०० ।।

श्रीमन्मुकुन्दमहिमस्तवमेतमर्घ्यं
यः कृष्णपादकमलस्य परागमिच्छन् ।।

नित्यं पठेत्प्रयतमानस आदरेण
श्रीमन्मुकुन्दकरुणामहिभाजनं स्यात् ।।१०१ ।।

जिसको श्रीकृष्ण के चरणकमल के रज की इच्छा हो, वह (भक्त) सावधान मन से आदरसहित यह प्रयोजनीय श्रीमुकुन्द-महिमा स्तोत्र का नित्य पाठ करे तो मुकुन्द श्रीकृष्ण की करुणा का पात्र होगा। यह कवि की प्रार्थना है ।।१०१ ।।

वन्दारुजनमन्दारं वात्सल्यादिगुणाकरम् ।।
श्रीश्रीनिवासमाचार्यं वन्देऽहं सकलार्थदम् ।।१ ।।
श्रीनिवासपदाम्भोजस्मरणोद्बुद्धबुद्धिना ।।
तत्प्रसादैककामेन कृतेयं ''भक्ततोषिणी'' ।।२ ।।
श्रीमत्किशोरदासेन श्रीवृन्दावनवासिना ।।
श्रीमुकुन्दपदाम्भोजयुगले चार्पिता शुभा ।।३ ।।

इति श्रीसनत्कुमारसन्ततिप्रवर्त्तक निखिलमहीमण्डलाचार्यचक्र-चूड़ामणि, श्रीभगवन्निम्बार्कमहामुनीन्द्रमताब्जभास्कर, पदवाक्यप्रमाणपारावारीण, विद्वद्वर, श्रीमत्पुरुषोत्तम-प्रसाद विरचित श्रीमुकुन्दमहिमस्तोत्रस्य श्री-वृन्दावन निवासिना वैष्णव पण्डित श्री-किशोरदासेन रचिता ''भक्ततोषिणी'' इत्याख्या भाषाव्याख्या समाप्ता ।।

हरिः ॐतत्सत् ।। शुभम्भूयात् ।।

पुस्तक प्राप्ति स्थान :
अखिल भारतीय निम्बार्काचार्यपीठ
निम्बार्कतीर्थ (सलेमाबाद), किशनगढ़
जिला – अजमेर (राजस्थान)
फोन : (01463) 227831

मुद्रक :
श्रीनिम्बार्क मुद्रणालय
निम्बार्कतीर्थ, सलेमाबाद

मूल्य : 5/– रूपये